14

मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास

भारत में मध्यकाल को महान सांस्क तिक के युग के रूप में जाना जाता है। इस काल में सांस्क तिक विकासों के एक नए चरण की शुरुआत हुई। तुर्क और मुगलों ने नए विचारों को पेश किया तथा धर्म, दर्शन और विचार, भाषा और साहित्य, स्थापत्य कला की शैलियां और इमारत निर्माण सामग्री का प्रयोग, चित्रकला और ललित कला के क्षेत्र में नई विशेषताओं का जन्म हुआ।

भारत हर क्षेत्र में पहले ही सांस्क तिक रूप से काफी सम द्ध था। विभिन्न संस्क तियों के संश्लेषण ने नई दार्शनिक तथा धार्मिक परम्पराओं, विचारों और संस्क ति के नए रूपों और शैलियों को जन्म दिया। इस अध्याय में आप कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में हुए विभिन्न सांस्क तिक विकासों का अध्ययन करेंगे।

हम मुख्यतः अध्ययन करेंगेः

- नए धार्मिक आंदोलन जैसे सूफी तथा भक्ति
- सिक्ख धर्म का नए धर्म के रूप में उदय
- विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक कार्यों का विकास
- उर्दू तथा फारसी भाषाओं तथा साहित्यिक कार्यों का विकास
- क्षेत्रीय विभिन्नताओं के साथ सल्तनत तथा मुगल काल कीस्थापत्य कला
- संगीत के नए प्रकार
- मुगल कला तथा भारत में जन्मीं अन्य नई शैलियाँ

हम उम्मीद करते हैं कि इस पाठ को पढ़ने के उपरांत इस काल के दौरान संस्क ति के आप के ज्ञान में व द्धि होगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत में सूफियों की विभिन्न कार्यप्रणाली तथा दर्शन बता सकेंगे;
- भारत में भक्ति संतों के विभिन्न वर्गों की कार्यप्रणाली तथा दर्शन की चर्चा कर सकेंगे;

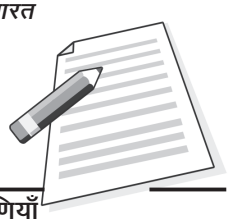

- सिक्ख धर्म के उदय, इसकी कार्य प्रणाली, खालसा पंथ तथा गुरु की संस्था के विषय में बता सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्णन कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में नई भाषाओं और साहित्य के उदय पर चर्चा कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में संगीत और न त्य की नई शैलियों का वर्णन कर सकेंगे; और
- मध्यकालीन स्थापत्य कला की प्रमुख शैलियों के निर्माण संबंधी नई तकनीकों और प्रयुक्त सामग्री की विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।

14.1 सूफीवाद

'सूफी' शब्द इस्लाम के रहस्यमय धार्मिक विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह 11वीं शताब्दी तक एक पूर्ण विकसित आंदोलन का रूप ले चुका था। सूफी संत, सूफियों द्वारा कठिन मार्ग को अपनाकर ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने पर जोर देते थे। सूफीवाद अथवा रहस्यवाद 8वीं शताब्दी में उदय हुआ तथा शुरुआती सूफियों में राबिया–अल–अदवई, अलजुनैद तथा बयाजिद बस्तमी का नाम उभर कर आता है। सूफीवाद का मूल आधार ईश्वर, मनुष्य तथा उन दोनों के मध्य जो संबंध, है, वह है प्रेम। उनका मानना है कि इंसान का उदय रुह (आत्मा) कुरबत (दैवी निकटता) तथा हलूल (दैवी रूप में मिलाप) के सिद्धांतों से हुआ है और इंसान और खुदा के रिश्तों से ही प्रेम (पवित्र प्रेम) तथा फना (खुद का समर्पण) अस्तित्व में आए। ऐसे लोगों को सूफी कहा जाता था जिनका ह्रदय पवित्र होता था; तथा जो अपनी तपस्या तथा खुदा को पाने के लिए प्रेम के सिद्धान्तों के द्वारा खुदा से वार्तालाप करते थे। मुरीद (शिष्य) को ईश्वर के साथ यह वार्तालाप करने के लिए प्रक्रिया के लिए मकामात (विभिन्न चरणों) से होकर गुजरना पड़ता था।

खानकाह (धर्मशाला) सूफियों के विभिन्न वर्गों की गतिविधियों का केन्द्र होती थीं। खानकाह शेख, पीर, या मुरशिद (शिक्षक) द्वारा संचालित होती थी जो अपने मुरीदों के साथ रहा करते थे। समय के साथ खानकाह शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में तब्दील होती चली गई। बारहवीं शताब्दी तक सूफी विभिन्न रूपों में संगठित हो गए। इन रूपों (सिलसिला) का मतलब कड़ी था तथा यह पीर तथा मुरीद की निरंतर कड़ियों को बतलाता था। पीर की म त्यु के पश्चात गुम्बद या मकबरा, दरगाह उसके मुरीदों तथा अनुयायियों के लिए केन्द्र बन जाता था।

10वीं शताब्दी में इस्लामी साम्राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सूफी पंथ का विस्तार हुआ। ईरान, खुरासान, ट्रांसोक्सियाना, मिस्र, सीरिया तथा बगदाद प्रमुख सूफी केन्द्र थे। अल–गज़ली (1059-1111 ई.) सर्वाधिक सम्मानित सूफी संतों में से एक माने जाते हैं। उन्होंने सूफी रहस्यवाद को इस्लाम में उचित जगह दिलाने के लिए सूफी रहस्यवाद को इस्लामी परम्परा के अनुकूल बनाया। उन्होंने शिष्यों के लिए आध्यात्मिक गुरु के मार्ग दर्शन को अपनाने पर ज़ोर दिया। साथ ही सर्वोच्च सत्ता पैगम्बर साहब के महत्त्व और उनके नियमों के पालन पर बल दिया।

भारत में सूफी पंथ की शुरुआत 11वीं शताब्दी में हुई। अल हुजवीरी, जिन्होंने उत्तरी भारत में स्वयं को स्थापित किया उन्हें लाहौर में दफनाया गया तथा उन्हें उपमहाद्वीप का सबसे पुराना सूफी संत होने का गौरव प्राप्त हुआ। भारतीय मध्यकालीन इतिहास में प्रमुख सूफी सिलसिले हैं – चिश्ती, सोहरावर्दिया, कादरिया तथा नक्शबंदिया।

सल्तनत काल में चिश्ती तथा सोहरावर्दी सिलसिले लोकप्रिय थे। पंजाब तथा सिंध में जहां सोहरावर्दी सक्रिय थे, वहीं चिश्ती दिल्ली, राजस्थान तथा गंगा के पश्चिमी क्षेत्रों में प्रेम का संदेश फैला रहे थे। सल्तनत काल के अंत तक वे गंगा क्षेत्र के पूर्वी क्षेत्रों (बिहार तथा बंगाल) और दक्कन तक फैल चुके थे। मध्यकाल में सूफियों ने इस्लामी धर्मतत्व विषयक सिद्धान्तों, जैसे वहादुत–उल–वजूद (जीवन की एकता) का प्रचार–प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा ज़ियारत (दरगाहों पर जाने की क्रिया) जैसी आदतों को विकसित करने को भी प्रोत्साहन दिया।

भारत में शुरू हुए सूफी मत की निम्न विशेषताएँ थीं:

- सूफी विभिन्न सिलसिलों (क्रमों) में व्यवस्थित थे।
- इनमें से अधिकतर सिलसिलों की शुरुआत प्रसिद्ध सूफी संतों या पीरों ने की थी। उनके नाम पर ये चलते थे तथा शिष्य उनका अनुसरण किया करते थे।
- सूफियों का मानना था कि खुदा की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक गुरु या पीर की आवश्यकता होती है।
- पीर अपने शिष्यों के साथ खानकाह में रहते थे।
- खानकाह (धर्मशाला) सूफी गतिविधियों का केन्द्र हुआ करती थी।
- खानकाह ज्ञान का एक प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे, जो कि मदरसों से सर्वथा भिन्न थे।
- बहुत से सूफी संतों ने संगीतमय धार्मिक सभा अर्थात 'सम' का अपनी खानकाह में आनंद उठाया। इस काल के दौरान संगीत की नई विधा कव्वाली का विकास हुआ।
- जियारत या सूफी संतों की दरगाहों की तीर्थयात्रा भी एक महत्त्वपूर्ण रस्म बनकर उभरी।
- सभी सूफी संत चमत्कार में विश्वास करते थे। लगभग सभी पीर खुद के द्वारा किए गए चमत्कारों से जुड़े हुए थे।
- राजतंत्र तथा शासन के बारे में हर सूफी सिलसिले के मत अलग–अलग थे।

चिश्ती सिलसिला

भारत में चिश्ती विचारधारा की स्थापना मुईनुद्दीन चिश्ती ने की थी। प्रतीत होता है कि भारत में वह मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय आए तथा इसके बाद 1206 में अजमेर चले गए। ख्वाजा मुईनुद्दीन की प्रसिद्धि में व द्धि सन 1235 में उनकी म त्यु के पश्चात् हुई। मुहम्मद तुगलक ने उनकी कब्र की यात्रा की तथा उसके पश्चात 15वीं शताब्दी में मालवा के महमूद खिलजी द्वारा मस्जिद तथा गुम्बद का निर्माण करवाया गया। मुगल बादशाह अकबर के शासन के पश्चात् इस दरगाह का संरक्षण अपनी ऊंचाई पर पहुंचा।

चित्र 14.1 अजमेर दरगाह

चिश्तियों का मानना था:

- प्रेम इंसान तथा खुदा के बीच में एक बंधन है।
- विभिन्न पंथों को मानने वालों के बीच सहनशीलता हो।
- विभिन्न धार्मिक विश्वासों के अनुसरण के बावजूद शिष्यों की स्वीकार्यता हो।
- सबकी भलाई का रवैया हो।
- हिन्दू तथा जैन योगियों के संपर्क में रहना। तथा
- सामान्य भाषा का प्रयोग करना।

दिल्ली में चिश्तियों की उपस्थिति कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के द्वारा जानी जाती है जो अपने ग हक्षेत्र ट्रांसोक्सियाना से 1221 ई. में दिल्ली में बस गए थे। यह मंगोल आक्रमण का वह काल था जब मंगोलों से बचकर मध्य एशिया के लोग भाग रहे थे। दिल्ली में उनकी मौजूदगी सोहरावर्दियों के लिए चुनौती बन गई थी तथा उन्होंने उन पर विभिन्न प्रकार के आरोप लगाकर दिल्ली छोड़ने को विवश कर दिया। दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने हाँलाकि इन आरोपों को खारिज कर दिया, जिससे सोहरावर्दियों के विरोध को हल्का कर दिया गया। चिश्ती पीरों ने ज़िंदगी की सादगी, गरीबी, विनम्रता तथा खुदा के प्रति निस्वार्थ समर्पण पर बल दिया। भौतिक वस्तुओं के परित्याग को उन्होंने इन्द्रियों पर नियंत्रण के लिए आवश्यक बताया, जो एक आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए जरूरी है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने ज़ोर दिया कि खुदा को पाने का सर्वोच्च तरीका मुसीबत में पड़े व्यक्ति की मदद करना, असहाय लोगों की जरूरतों को पूरा करना तथा भूखे को भोजन देना है। वे सुल्तानों से किसी भी प्रकार की मदद से इंकार करते थे।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण चिश्ती बाबा फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर ने मुल्तान तथा लाहौर के बीच रास्ते में हांसी (हरियाणा) में पड़ाव डाला। सल्तनत काल के सबसे विख्यात सूफी

संत निज़ामुद्दीन औलिया थे। उनका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है जो राजनीतिक परिवर्तनों तथा उथल–पुथल का काल था। अपने जीवन काल में उन्होंने बलबन की म त्यु के पश्चात् खिलजी तथा खिलजी के पश्चात् तुगलकों का शासन देखा। निज़ामुद्दीन औलिया के जीवन के विषय में कई कहानियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ख्वाजा ने सुल्तान के दरबार में विभिन्न संघों तथा पक्षों में से किसी से भी मतलब न रखने की कड़ी नीति अपनाई थी, जिससे वे लोगों की नजरों में आदर के पात्र थे। नसीरुद्दीन चिराग, दिल्ली के अन्य लोकप्रिय संत थे। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

इन सब खूबियों ने सूफ़िओं को एक वफादार तथा समर्पित शिष्य समुदाय बनाने के योग्य किया।

दक्कन में 13वीं शताब्दी में चिश्ती सिलसिला शेख बुरहानुद्दीन गरीब द्वारा स्थापित हुआ। 14 से 16वीं शताब्दी के बीच कई सूफी संत गुलबर्ग प्रस्थान कर गए। यहाँ एक परिवर्तन दिखाई देता है कि इस समय तक कुछ चिश्ती संत शासन से दान तथा संरक्षण प्राप्त करने लगे थे। मुहम्मद बंदा नवाज उस क्षेत्र के लोकप्रिय संतों में से एक थे। दक्कन क्षेत्र में बीजापुर शहर सूफी गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनकर उभरा।

सोहरावर्दी सिलसिला

इस सिलसिले (पंथ) की स्थापना बगदाद में शियाबुद्दीन सोहरावर्दी ने की थी। यह भारत में बहाउद्दीन जकरिया द्वारा स्थापित हुआ। उसने मुल्तान में आधार बनाकर सोहरावर्दी वर्ग की नींव डाली, जो उस समय कुबाचा के अधीन था। वह कुबाचा के खिलाफ था तथा खुलेआम उसके विरोधी इल्तुतमिश की अच्छाइयों के गुण गाता था। उसके तरीके चिश्तियों से सर्वथा भिन्न थे। चिश्तियों के उलट सोहरावर्दी सुलतान शासकों से दान लेने में परहेज़ नहीं करते थे। उनका मानना था कि सूफियों को संपत्ति तथा ज्ञान, रहस्यात्मक ज्ञान को हासिल करना चाहिए। सोहरावर्दी संत मानते थे कि गरीबों की सेवा बेहतर ढंग से करने के लिए यह आवश्यक है। उन्होंने धार्मिक विश्वासों के बाहरी प्रकार के अनुसरण करने पर ज़ोर दिया और इल्म (बुद्धि) तथा रहस्यवाद के समन्वय की वकालत की। शेखों के सामने सिर झुकाना, आगन्तुकों को पानी पेश करना तथा पंथ में दीक्षा के समय सिर का मुंडन करवाना जैसी प्रथाएं नकार दी गईं जिनका अनुसरण चिश्ती किया करते थे, उनकी म त्यु के पश्चात भी इन सिलसिलों ने पंजाब तथा सिंध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना जारी रखा।

नक़्शबंदी सिलसिला

भारत में इस वर्ग की शुरुआत ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी ने की। इस सिलसिले के रहस्यवादियों ने प्रारम्भ में शरीयत के पालन पर ज़ोर दिया तथा हर नवपरिवर्तन अर्थात बिद्दत दर्शन के सार की सार्वजनिक निंदा की। ख्वाजा बहाऊद्दीन नक्शबंदी का उत्तराधिकारी शेख बरकी बिल्लाह दिल्ली के नज़दीक ही रहे तथा उनके उत्तराधिकारी शेख अहमद सिरहिन्दी ने इस्लाम को सभी उदार तथा उनके अनुसार गैर इस्लामी पद्धतियों से परिष्क त करने का प्रयत्न किया। उसने सम (धार्मिक संगीत) सुनने का तथा संतों की दरगाहों पर जाने का भी पुरज़ोर विरोध किया। उसने हिन्दुओं तथा शियाओं के साथ संबंधों का भी जमकर विरोध किया। उसने अकबर द्वारा कई गैर मुस्लिमों को नया

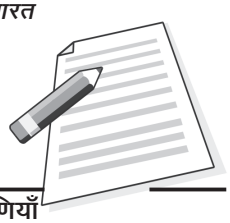

दर्जा देने की तथा जज़िया हटाने और गौवध पर प्रतिबंध की जमकर निंदा की। उसके अनुसार वह इस्लाम के स्वर्ण युग का मुजादि्द है। उसने इस सिद्धांत को बनाए रखा कि खुदा और इंसान के बीच मालिक तथा गुलाम का संबंध है न कि प्रेमी और प्रेमिका का। उसने ज़ोर दिया कि इंसान का खुदा के प्रति एकमात्र रिश्ता विश्वास तथा खुदा को स जन–कर्ता मानने की ज़िम्मेदारी का है। उसने रहस्यवादी सिद्धांत तथा रुढ़िवादी इस्लाम की शिक्षाओं में समन्वय लाने का प्रयत्न किया।

कादिरी सिलसिला

कादरिया सिलसिला पंजाब में लोकप्रिय था। शेख अब्दुल कादिर तथा उनके पुत्र अकबर के समय में मुगलों के समर्थक थे। इस वर्ग के पीरों ने वहादत–अल–वजूद की संकल्पना का समर्थन किया। इस वर्ग के प्रसिद्ध सूफी संत मियां मीर थे जिनके शिष्य राजकुमारी जहांआरा तथा उसका भाई दारा थे। शेख की शिक्षाओं का प्रभाव राजकुमार के कामों में मिलता। शाह बदक्शनी इस सिलसिले के एक और प्रसिद्ध संत है जिन्होंने कट्टरवादी तत्वों को नकारते हुए घोषणा की थी कि एक नास्तिक जिसने सच्चाई को समझ लिया है तथा सत्य का ज्ञान पा लिया है वह एक आस्तिक है, तथा एक आस्तिक जिसे सच्चाई का भाव नहीं है वह नास्तिक है।

मध्यकाल में इस्लाम के कट्टर पंथी विचार तथा उदारवादी विचारों में लगातार संघर्ष देखने को मिलता है। सूफियों में दोनों ही प्रकार की विशेषता मिलती है। एक ओर जहाँ चिश्ती हैं जो उदार द ष्टिकोण वाले हैं तथा स्थानीय परम्पराओं के समावेश की बात करते हैं, और दूसरी ओर कादिरी पंथ के शेख अब्दुल हक जैसे भी लोग थे जो मानते थे कि इस्लाम की शुद्धता कमजोर हो रही है। इस्लाम के कट्टरपंथी विचार उलेमाओं द्वारा व्यक्त किए गए थे जिन्होंने शरीयत के अनुसार ही जीवन जीने पर ज़ोर दिया। सूफिओं की उदारवादी विचारधारा ने कई समर्थक बनाए, जिन्होंने उलेमाओं द्वारा इस्लाम के नियमों की संकीर्ण व्याख्या के विरुद्ध कई तर्क दिए।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. पीर कौन थे?

2. अल–गज़ली कौन थे?

3. 'सम' शब्द से आप क्या समझते हैं?

4. खिलजी और तुगलकों के समय में कौन से प्रसिद्ध चिश्ती सूफी संत थे?

5. शेख अब्दुल कादिर कौन थे?

14.2 भक्ति आंदोलन

भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन का अर्थ ऐसे आंदोलन से है जिसमें व्यक्तिगत कल्पना वाले सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव लोकप्रिय हुआ। इसका उद्‌गम हमें प्राचीन भारत के ब्राह्मण तथा बौद्ध परम्पराओं में मिलता है। यह दक्षिण भारत में एक धार्मिक प्रथा से प्रारंभ हुआ तथा धार्मिक समानता और व्यापक स्तर पर सामाजिक प्रतिभागिता से यह एक लोकप्रिय आंदोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रख्यात संतों के नेत त्व में यह आंदोलन 10वीं शताब्दी ई. में अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गया। भक्ति के सिद्धांत के प्रचार–प्रसार के लिए यह आंदोलन विभिन्न परम्पराओं से बना तथा उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में इसने विभिन्न रूप धारण किए।

भक्ति आंदोलन ने रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी परम्पराओं पर प्रहार करने का प्रयत्न किया। आरंभिक मध्यकाल में इस आंदोलन में कमी आई। इतिहासकार भक्ति आंदोलन के उदय के लिए इस्लाम के आगमन तथा सूफियों के प्रचार को उत्तरदायी मानते हैं। उनका तर्क है कि तुर्कों की विजय ने परम्परावादी राजपूत–ब्राह्मण वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिक्रिया के लिए राह बनाई। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भक्ति आंदोलन का उदय सामन्ती अत्याचार के खिलाफ एक प्रतिक्रिया थी। इस तथ्य के पक्ष में हमें भक्ति आंदोलन के संतों की सामन्तवाद विरोधी कविताएं मिलती हैं जैसे, कबीर, नानक, चैतन्य और तुलसीदास की। भक्ति आंदोलन के उद्‌भव संबंधी एक भी विचार ऐसा नहीं है जो कि कायम रह सके। यह तत्कालीन संतों की विचारधारा तथा कविताओं से स्पष्ट है कि वे रुढ़िवादी ब्राह्मण का विद्रोह कर रहे थे। वे धार्मिक समानता में विश्वास करते थे तथा स्वयं को सामान्य जनता की दुख–तकलीफों में शामिल करते थे।

कुछ विद्वानों का मानना है कि आरंभिक मध्यकाल में हुए सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों ने भक्ति आंदोलन के उद्‌भव के लिए आवश्यक माहौल बनाया। 13वीं तथा 14वीं शताब्दी में निर्मित वस्तुओं, विलासिता संबंधी तथा अन्य कलात्मक वस्तुओं की मांग ने शहरों में शिल्पियों का प्रवेश कराया। ये शिल्पी समानता के विचारों से प्रभावित होकर भक्ति आंदोलन के प्रति आकर्षित हुए। इन समूहों ने उन्हें ब्राहमणों द्वारा दिए निम्न स्तर को मानने से इंकार कर दिया। इस आंदोलन को समाज के इस वर्ग से पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। पंजाब में कई ऐसे स्थान थे जहां मात्र स्त्री ही नहीं, बल्कि जाट किसान भी इस आंदोलन में सम्मिलित हुए।

मध्यकाल के आरम्भिक वर्षो में भक्ति आंदोलन सुधार व परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन बन गया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में असनातनी आंदोलनों के उदय के बाद भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन नए विचारों व प्रथाओं के उद्‌गम को प्रस्तुत करता है, जिसने सम्पूर्ण देश को प्रभावित किया तथा सुधार आंदोलनों को प्रारम्भ किया।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन में सामाजिक–आर्थिक आंदोलन सम्मिलित थे जो दक्षिण के किसी आचार्य से संबंधित थे तथा दक्षिण में प्रारंभ हुए आंदोलन की ही निरन्तरता लगभग इस आंदोलन में दिखाई देती है। हालाँकि इन दोनों क्षेत्रों की परम्पराओं में समानता मिलती है किंतु प्रत्येक संत की शिक्षाओं में भक्ति की धारणा भिन्न ही दिखती है। कबीर जैसे निर्गुण संतों ने वर्णाश्रम की पूरी व्यवस्था तथा इस पर

आधारित जाति व्यवस्था को नकार कर नए मूल्यों की स्थापना की जिसने एक नए तथा उदार वर्ग के उदय में मदद की। सगुण भक्ति धारा वाले सतों, जैसे–तुलसीदास ने वर्ण व्यवस्था को कायम रखते हुए ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को बनाए रखा। उन्होंने भगवान में समर्पण तथा विश्वास पर बल दिया तथा वे मूर्ति पूजा के प्रति विशेष रूप से कटिबद्ध थे।

एकेश्वरवादी भक्ति

उत्तर भारत में कबीर (1440-1578 ई.) सबसे पुराने तथा सर्वाधिक प्रभावशाली सन्त थे। वे एक जुलाहे थे। उन्होंने अपनी जिन्दगी का एक लम्बा समय बनारस में गुज़ारा था। उनकी कविताएँ सिक्खों के पवित्र ग्रंथ गुरु ग्रन्थ साहिब में भी सम्मिलित की गई है। कबीर से प्रेरित होने वाले मुख्य सन्त रैदास थे। गुरुनानक पंजाब में खत्री वर्ग से थे तथा धन्ना राजस्थान के जाट किसान थे। उत्तर भारत के एकेश्वरवादी सन्तों की शिक्षाओं में निम्न समानताएँ हमें देखने को मिलती हैं–

- अधिकतर एकेश्वरवादी सन्त निम्न जातियों से सम्बन्धित थे, तथा इस बात के प्रति जागरूक थे कि उनके विचारों में समानता है। वे एक दूसरे की शिक्षाओं तथा प्रभाव के प्रति भी सजग थे। अपनी–अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों का तथा एक दूसरे का वर्णन विचारधाराओं में एकता को दर्शाते हुए किया है।
- सभी वैष्णव भक्ति के सिद्धान्त से तथा नाथपंथी आन्दोलन और सूफी से भी प्रभावित थे। उनके विचार इन तीनों परम्पराओं का संयोजन प्रतीत होते हैं।
- खुदा के प्रति व्यक्तिगत अनुभव को दी गई महत्ता भी निर्गुण भक्ति सन्तों की एक अन्य विशेषता है। वे निर्गुण भक्ति में विश्वास करते थे न कि सगुण भक्ति में। उन्होंने भक्ति का सिद्धान्त तो वैष्णववाद से लिया था, किन्तु उसे निर्गुण रूप दिया था। हालाँकि उन्होंने खुदा को कई नामों से पुकारा किन्तु उनके खुदा अरूपी, अनवतरित, सर्वव्यापी तथा अवर्णनीय हैं।
- भक्ति सन्तों ने तत्कालीन वर्चस्व वाले धर्मों (हिन्दू तथा इस्लाम) दोनों को नकार दिया तथा इन धर्मों के नकारात्मक पहलुओं की निन्दा की। उन्होंने ब्राहमणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा जाति व्यवस्था और मूर्तिपूजा पर प्रहार किया।
- उन्होंने पूरे उत्तर भारत में प्रचलित तथा लोकप्रिय भाषा में कविताओं का स जन किया। इससे उन्हें सर्वसामान्य में अपने विचारों का प्रचार करने में मदद मिली। इससे विभिन्न निम्न वर्गों के बीच उनके विचार द्रुत गति से फैले।

वैष्णव भक्ति

14वीं शताब्दी तथा 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत में रामानन्द लोकप्रिय वैष्णव भक्ति सन्त बनकर उभरे। हालाँकि वे दक्षिण भारत मूल के थे, किन्तु बनारस में निवास करते थे। क्योंकि उनके अनुसार यह दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन तथा उत्तर भारत के वैष्णव भक्ति आन्दोलन के बीच का सूत्र था। उन्होंने अपनी भक्ति का विषय विष्णु के बजाय राम को बना लिया। उन्होंने राम तथा सीता की उपासना की

और उत्तर भारत में राम की उपासना के जनक कहलाए। एकेश्वरवादी सन्तों की ही भाँति उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध किया तथा उपासना पद्धति को लोकप्रिय बनाने के लिए सामान्य भाषा में शिक्षाओं का प्रचार किया। उनके अनुयायियों को रामानन्दी कहा गया। भक्ति आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण सन्त तुलसीदास भी हैं। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रख्यात भक्ति संत वल्लभाचार्य ने क ष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाया। उनका अनुसरण करने वालों में मुख्य सन्त सूरदास (1483-1563) तथा मीरांबाई (1503-1573) थे।

बंगाल के भक्ति आन्दोलन का स्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत में चल रहे भक्ति आंदोलन से सर्वथा भिन्न था। यह भागवत पुराण की वैष्णव भक्ति परम्परा, सहज बौद्ध तथा नाथपंथी परम्परा से प्रभावित था। ये परम्पराएँ समर्पण के गूढ़ तथा भावना पर आधारित थीं। 12वीं शताब्दी में जयदेव इस परम्परा के मुख्य कवि थे। उन्होंने क ष्ण और राधा के संदर्भों द्वारा प्रेम के रहस्यात्मक पहलुओं को दर्शाया। इस क्षेत्र के लोकप्रिय भक्ति सन्त चैतन्य हुए। उन्हें क ष्ण के ही एक अवतार के रूप में देखा गया। उन्होने ब्राहमण व धर्म ग्रंथों के वर्चस्व पर कोई प्रश्न चिह्न तो नहीं लगाए। उन्होंने संकीर्तन (पवित्र न त्य के साथ समूह गान) को भी लोकप्रिय बनाया। उनके समय में बंगाल में भक्ति आन्दोलन एक सुधार आन्दोलन में बदल गया, क्योंकि इसने जाति–व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर दिया।

महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन भागवत पुराण तथा शिव नाथपंथी से प्रेरित हुआ। महाराष्ट्र का सबसे उल्लेखनीय भक्ति सन्त ज्ञानेश्वर थे। भागवत गीता पर उनकी टीका ज्ञानेश्वरी ने महाराष्ट्र में भक्ति दर्शन की नींव डाली। जाति व्यवस्था का पुरजोर विरोध करते हुए उन्होंने भक्ति के द्वारा प्रभु को पाने पर बल दिया। उस क्षेत्र के देव विठोबा थे तथा उनके अनुयायी उनके मन्दिर में वर्ष में दो बार तीर्थ यात्रा किया करते थे। महाराष्ट्र के अन्य महत्त्वपूर्ण भक्ति धारा के संत, सन्त नामदेव (1270-1350) थे। एक ओर उत्तर भारत में उन्हें एकेश्वरवादी तथा निर्गुण धारा का संत मानते हैं वहीं महाराष्ट्र में वह वरकरी (वैष्णव भक्ति परम्परा) परम्परा के ही अंग माने जाते है। महाराष्ट्र के अन्य भक्ति संतों में मुख्य थे चोका, सोनार, तुकाराम तथा एकनाथ। तुकाराम की शिक्षाएं दोहों के रूप में संग्रहीत हैं जो गाथा का निर्माण करती हैं जबकि मराठी में एकनाथ की शिक्षा मराठी भाषा में आध्यात्मिक रचनाएं हैं।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. भक्ति आंदोलन ने ––––– से प थक हाने का प्रयास किया?

2. किन्ही तीन महत्त्वपूर्ण भक्ति संतों के नाम लिखें।

3. चैतन्य कौन थे?

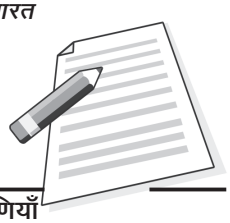

सिक्ख धर्म

गुरुनानक की शिक्षाएँ तथा दर्शन भारत के दर्शनवादी विचारों के एक महत्त्वपूर्ण अंग का निर्माण करते है। उनके दर्शन में तीन मुख्य तत्त्व थे – चमत्कारी नेत त्व (गुरु), विचारधारा (सबद,) तथा संगठन (संगत)। नानक ने तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का मूल्यांकन किया तथा एक नए धर्म की नींव डाली जो मुक्ति को ओर ले जा सके। उन्होंने मूर्तिपूजा का पुरजोर खंडन किया, तीर्थयात्राओं का समर्थन नहीं किया तथा अवतारों के सिद्धात को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कर्मकांडों की कड़ी निंदा की। मोक्ष की प्राप्ति के लिए उन्होंने सच्चे गुरु को पाने पर बल दिया। उन्होंने लोगों को इन सिद्धातों का अनुसरण करने तथा उपासना करने को कहा–सच, हलाल (ईमानदारी की कमाई), खैर (दूसरों की सलामती की दुआ), नियत (अच्छे भाव) तथा खुदा की सेवा। उन्होंने जाति तथा उसके द्वारा होनी वाली असमानता को पूर्णतः नकारा। उन्होंने कहा कि व्यक्ति की

चित्र 14.2 गुरूनानक

जाति तथा इज्जत उसके द्वारा किए गए कार्यों के द्वारा निर्धारित होनी चाहिए। उनके गीतों में दो मुख्य सिद्धांत हैं – सच तथा नाम। खुदा के प्रति आदर भाव उन्होंने गुरु तथा हुकुम द्वारा दर्शाया गया है। उन्होंने लंगर (सामूहिक रसोई घर) के सिद्धान्त की शुरुआत की। गुरु नानक ने खुद को जनता के साथ ही जोड़ा। हालांकि गुरु नानक ने समानता पर बल दिया, किन्तु शिष्यों के बीच असमानताएं व्याप्त रहीं। गुरु गोबिंन्द सिंह ने 17वीं शताब्दी में समानता के विचार को पुनः स्थापित किया। सन् 1699 में गुरु गोबिंद सिंह ने विभिन्न सिक्ख समूहों के मध्य व्याप्त मतभेदों को दूर किया तथा खालसा पंथ की स्थापना की। इस संस्था ने मसंदों को मध्यस्थ की भूमिका से हटा दिया। इसके पश्चात् हर सिख गुरु के साथ प्रत्यक्ष संबंध रख सकता था। सिक्खों के बीच एकता बनाए रखने के लिए गुरु ने कुछ नई परम्पराओं का पालन अनिवार्य किया। ये थे, धर्म में प्रवेश

के लिए खंडे (दोधारी तलवार) द्वारा अम त छकना, केश रखना और उन्हें न कटवाना, शस्त्र धारण करना तथा अपने नाम में 'सिंह' उपनाम रखना।

इस काल के दौरान उदय होने वाला एक अन्य संस्थागत विचार गुरु पंथ था। इसने खालसा पंथ के सामूहिक अधिकार को पवित्रता प्रदान की, जिसने पंथ को गुरु के साथ संयुक्त किया। गुरु नानक ने अपने अंतिम दिनों में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसे श्रद्धा व आदर प्रदान किया, जिसने यह संदेश दिया कि गुरु तथा सिख एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं। इसने संगत (सिखों की सामूहिक संस्था) के लिए समस्याएं उत्पन्न कर दी, जिसमें कहा गया था कि संगत में खुद खुदा उपस्थित होते हैं। जब गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा बनाया, तब उन्होंने पंज प्यारों का चयन किया तथा उनसे खुद के लिए पहुल (अम त छकाने) का प्रबंध करने को कहा। इस व्यवस्था ने गुरु तथा खालसा के बीच के अंतर को सांकेतिक रूप से समाप्त कर दिया। कहा जाता है कि गुरु गोबिंद सिंह ने कहा कि खालसा उन्हीं का रूप है।

गुरु नानक व्यापारी खत्री जाति से थे, जबकि उनके अनुयायी अधिकतर देहाती जाट थे। ये गुरु गोबिंद सिंह थे, जिसने सिखों के बीच खालसा पंथ चलाया। गुरु अर्जुन सिंह ने गुरु ग्रंथ साहब का संकलन किया था। गुरु गोबिंद सिंह की म त्यु के पश्चात गुरु परम्परा समाप्त हो गई। यह माना गया कि गुरु की आत्मा किसी उत्तराधिकारी के पास नहीं गई बल्कि वह गुरु ग्रंथ साहिब में समा गई।

पाठागत प्रश्न 14.3

1. 'खालसा' शब्द से आप क्या समझते है?

2. खत्री कौन थे?

14.4 साहित्य और भाषाएं

मध्यकालीन भारत में सम द्ध साहित्य तथा नई भाषाओं का विकास को देखने को मिलता है। इतिहासकारों के बीच रुढ़िगत विचार यह है कि दिल्ली सल्तनत द्वारा फारसी को संरक्षण प्रदान करने की वजह से संस्क त के शाही संरक्षण में गिरावट आई। किन्तु इस काल में संस्क त साहित्य में भी काफी रचना हुई। इस काल में काव्यात्मक रचनाओं 'काव्य' (काव्यात्मक विवरण) की रचना उल्लेखनीय रही तथा ऐसे ग्रंथों की रचना हुई जिनमें कानून का वर्णन था, जो धर्मशास्त्र कहलाए।

मध्यकालीन युग के पूर्वार्द्ध में उत्तर और दक्षिण भारत में कई छोटे शासकों द्वारा संस्क त को संरक्षण प्राप्त था। पश्चिम भारत में एक प्रमुख जैन विद्वान हेमचन्द्र सूरी था, जिसने संस्क त में रचनाओं का स जन किया तथा चैतन्य ने भी संस्क त भाषा में स जन किया। इस काल में लिखे गए काफी नाटक हमें प्राप्त होते हैं। लेखन की एक नई शैली 'चम्पू' का उदय भी हम इस काल में पाते हैं। यह एक विधा थी जिसमें पद्य तथा गद्य का मिश्रण था। संस्क त की तत्कालीन रचनाओं में जो राजपूतों के शाही संरक्षण में लिखी गई थी,

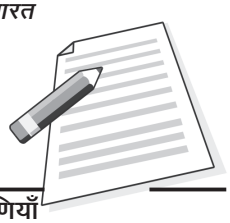

राजपूतों के पारिवारिक इतिहास के वर्णन थे जैसे प थ्वीराज विजय तथा हम्मीर महाकाव्य। इस काल की ऐतिहासिक काव्य रचनाओं में गुजरात के सुल्तान महमूद बेग्रा के दरबारी कवि उदयराज द्वारा लिखी गई जीवनी राजविनोद है। अन्य महत्त्वपूर्ण रचना कल्हण की राजतरंगिणी है, जिसमे कश्मीर के इतिहास का वर्णन है। यह 12वीं सदी में लिखी गई थी। राजतरंगिणी द्वितीय जोनाराजा द्वारा लिखी गई जिसमें जयसिम्हा से सुल्तान जैनुल अबिदिन तक के कश्मीर के शासकों का विवरण है। त तीय भाग श्रीवर द्वारा लिखा गया जिसने 1486 तक क्षेत्र के इतिहास को समेटा। इनके अतिरिक्त अर्द्ध ऐतिहासिक गद्य 'प्रबन्ध' का भी उल्लेख उस काल में मिलता है।

15वीं शताब्दी के पश्चात संस्क त को दक्षिण में विजयनगर शासकों के, तंजौर के नायक तथा त्रावणकोर और कोचीन के शासकों के दरबारों में संरक्षण प्राप्त होता रहा। संस्क त साहित्य की प्रमुख विद्याएं, जैसे – महाकाव्य, श्लेष काव्य, चम्पू काव्य, नाटक तथा ऐतिहासिक काव्यों का स जन चलता रहा। उस काल के प्रमुख लेखकों में गोविन्द दीक्षित (साहित्य सुधा और संगीतसुधानिधि–महत्त्वपूर्ण रचनाएं), अप्पय दीक्षित (वेलौर के नायक वंश के दरबारी कवि), नीलनाथ दीक्षित (मदुरई के नायक साम्राज्य में मंत्री), चक्रकवि (कोजिकोड के शासकों का संरक्षण प्राप्त था) थे।

ऐतिहासिक काव्य न सिर्फ शासकों द्वारा किए गए शोषण पर प्रकाश डालते हैं, बल्कि लेखकों की सामाजिक स्थिति को भी दर्शाते हैं। कुछ मुगल जैसे दारा शिकोह इत्यादि का भी इन काव्यों में वर्णन है। मुगल राजकुमार को बनारस के न सिंह सरस्वती के सम्मान में प्रशास्ति की रचना करने का श्रेय जाता है। बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासकों के दरबार में हम कुछ रचनाएं पाते हैं, परन्तु इस काल में संस्क त साहित्य पतन की ओर बढ़ रहा था।

फारसी साहित्य

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात उपमहाद्वीप में नई भाषा तथा साहित्यिक शैली का जन्म हुआ। उपमहाद्वीप में फारसी साहित्य के विकास ने अमीर खुसरो के साथ नए युग में कदम रखा। उनका जन्म तुर्क विस्थापितों के परिवार में हुआ था तथा बलबन के काल में उन्होंने कवि के रूप में रचनाओं का स जन प्रारम्भ किया। वे निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे तथा उन्हें जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी तथा गयासुद्दीन तुगलक के दरबार में संरक्षण प्राप्त था। कहा जाता है कि उन्होंने विभिन्न शैलियों में 99 रचनाओं की रचना की जिनमें विविध विषयवस्तु थी। उनकी कविताएं गीत, वीरगाथा, महाकाव्य तथा शोकगीत हर विधा में लिखी गई थी। उनकी लेखन शैली में भारतीय संदर्भ में फारसी शैली का प्रतिनिधित्व पहली बार हम पाते हैं। इसे सबक–ए–हिन्दी भारतीय शैली के रूप में जाना गया। उनकी प्रमुख रचनाओं में मुल्ला–उल–अनवर, शिरिन खुसरो, लैला मजनूँ तथा आइना–ए–सिकन्दरी है। ये सभी रचनाएं अलाउद्दीन खिलजी को समर्पित थीं। उनके पांच मुख्य दीवान गज़ल हैं – तुफ्त–उस–सिगार, बकिया–नकिया तथा निहायत–उल–कमाल। उन्होंने मसनवी (व्याख्यात्मक कविताएं) भी लिखीं जिनका कि ऐतिहासिक तथा साहित्यिक मूल्य हैं। इनमें मुख्य है – किरान–उस–सदैन, मिफ्ता–उल–फतेह (जलालुद्दीन खिलज़ी की सैन्य सफलताओं पर आधारित), तुगलक–नामा (गयासुद्दीन तुगलक का सत्ता तक पहुँचना) तथा

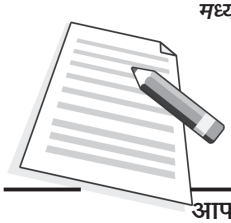

आपकी टिप्पणियाँ

खजाएन–उल–फतेह (अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण विजय)। अन्य फारसी कवियों में शेख नजमुद्दीन हसन थे, जो अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में थे। उनकी गज़लों ने उन्हें हिन्दुस्तान के सैद की उपाधि दिलवाई।

सल्तनत काल के साहित्य की मुख्य विशेषता दरबार का ऐतिहासिक लिखित वर्णन है। इनमें से मुख्य हैं– मिनाज–उस–सिराज द्वारा तबाकत–ए–नसिरी, ईसामी द्वारा फतेह–उस–सलातीन, तथा फिरोजशाह तुगलक द्वारा फतेहत–ए–फिरोज़शाही। इस काल में ज़ियाउद्दीन बरानी ने फारसी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया। उसकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं में तारीख–ए–फिरोजशाही तथा फतवा–ए–जहांदिरी मुख्य हैं। इस काल में सूफी साहित्य के नए रूप 'मलफुज़त' का भी उदय हुआ जिसमें सूफी संतों तथा खुदा के बीच वार्तालाप है। इन रचनाओं में प्रमुख हैं शेख निज़ामुद्दीन औलिया के किस्सों से भरपूर अमीर हसन सिज़ी द्वारा लिखित फवैद उल फुआद तथा शेख नसीरुद्दीन महमूद के किस्सों सहित खैर–उल–मज़लिस। इस काल में कई रचनाओं का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया था। महाभारत तथा राजतरंगिणी का भी इसी दौरान फारसी भाषा में अनुवाद हुआ। संस्क त से फारसी भाषा में अनुवाद फिरोज तुगलक तथा सिकन्दर लोदी के शासन काल में काफी किए गए थे।

सल्तनत काल की ही भाँति मुगल काल में भी दरबार की भाषा फारसी ही रही। मुगल शासकों और राजकुमारों ने भी लेखन की परम्परा को जीवित रखा। प्रथम मुगल बादशाह बाबर ने, जो एक विद्वान था, अपनी यादों को तुर्की में लिखा जिसे बाद में अब्दुल रहीम खान खानखाना ने फारसी में अनुवाद किया। हुमायूँ ने फारसी दीवान की रचना की। राजकुमार दारा शुकोह ने सूफी सन्त मिया मीर तथा उनके शिष्यों का जीवन परिचय सकी नतुल औलिया में दिया। उसने मज़मौल बहरैन (दो महासागरों का मिलन) की भी रचना की। इस काल में हम फारसी शैली के नए प्रारूप सबक–ए–हिन्दी (भारतीय शैली) को पाते है जिसे इस युग में यहाँ घूमने आए तथा यहीं बस गए फारसी कवियों ने लिखा। फैज़ी, उर्फी, घनी तालिब कश्मीरी तथा बेदिल ऐसे रचनाकार थे, जिन्हें मुगलों से सरंक्षण प्राप्त हुआ।

फैज़ी की मुख्य रचनाओं में तबाशिर अल सबह थी। उसने हिन्दू धर्म की कई पुस्तकों का भी अनुवाद किया। अब्दुर रहीम खान खाना अकबर तथा जहाँगीर के समय का प्रख्यात रचनाकार था। अकबर ने महान विद्वान इतिहासकार अबुल फज़ल को सरंक्षण प्रदान किया था। कहा जाता है कि उसके पुस्तकालय में 4000 से अधिक पुस्तकें थी। अपने शासनकाल के दौरान अकबर ने कई लेखकों को सरंक्षण प्रदान किया था। अली–कुली सलेम तथा अबू तालिब कलीम शाहजहाँ के समय के मुख्य कवि थे। अबू तालिब कलीम ने बादशाहनामा की रचना की थी। दक्षिण में फारसी साहित्य को बीजापुर के शासक आदिल शाही से संरक्षण प्राप्त हुआ, जिनके दरबार में मलिक कौमी तथा मुल्ला जुहुरी मुख्य फारसी कवि थे। गोलकंडा के कुतुबशाही ने मुहम्मद हुसैन तबरेज़ी जैसे कवियों को संरक्षण प्रदान किया। मुगल काल में फारसी साहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और प्रगति को प्रभावित किया। पंजाबी, पश्तो सिंधी तथा कश्मीरी भाषाएँ फारसी भाषा से प्रभावित हुईं।

क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति तथा विकास

मुगल काल के दौरान हिन्दी, बंगाली, असमिया, उड़िया, मराठी तथा गुजराती भाषाओं की प्रगति इस काल का महत्त्वपूर्ण चरण था। इन भाषाओं का अस्तित्व 7वीं तथा 8वीं शताब्दी से मिलना प्रारम्भ होता है, जब प्राक त भाषा से दूरी प्रारम्भ हुई। दक्षिण में 14वीं शताब्दी में मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में उभरी। क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति को क्षेत्रीय भावनाओं तथा प्रान्तीय राजनीति के उदय के संदर्भ में देखा जा सकता है। इन सबने संस्क त के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसके कारण फारसी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रशासनिक कार्यों होने लगा। भक्ति आंदोलन तथा उसके प्रचार में इन भाषाओं के प्रयोग ने इन भाषाओं के विकास और प्रगति में योगदान किया।

हिन्दी और उर्दू

क्षेत्रीय बोलियों, जैसे–ब्रजभाषा, हरियाणवी तथा दिल्ली और पंजाब के आस–पास बोली जाने वाली क्षेत्रीय भाषाओं ने उर्दू को विकासकालीन अवस्था में प्रभावित किया। इस भाषा का मूल ढांचा खड़ी बोली (सभी क्षेत्रीय भाषाओं का मिश्रण) बना है। इस भाषा ने फारसी भाषा की लिपि तथा साहित्यक शैली को अपनाया। उर्दू शब्द मूल रूप से तुर्की भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है सेना अथवा शिविर। ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू भाषा का विस्तार तुर्की शिविरों में अधिकारियों तथा सैनिकों के बीच बोली जाने वाली भाषा के रूप में हुआ। हिन्दवी भाषा से क्रमशः उर्दू तथा हिन्दी भाषाओं ने आकार ग्रहण किया। अमीर खुसरो की रचनाओं ने इस भाषा की नींव डाली। दक्कन में 14वीं शताब्दी से इस भाषा के प्रयोग ने नई बोली को जन्म दिया जिसे दक्किनी कहा गया। इस भाषा के मुख्य केन्द्र थे, गुजरात, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर तथा औरंगाबाद। इस परम्परा के सबसे पुराने लेखक सैयद् बंदा नवाज़ गेसुदराज़ थे जो कि बहमनी साम्राज्य के प्रमुख सूफी संत थे। बीजापुर का सुल्तान, इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय स्वयं कला का महान संरक्षक तथा दक्किनी भाषा में संगीत पर लिखी किताब का लेखक था।

7वीं तथा 8वी शताब्दियों के मध्य तथा 14वीं शताब्दी में हिन्दी अपभ्रंश अवस्था से विकसित हुई। इसे वीरगाथा काल या आदिकाल के नाम से जाना जाता हैं। विभिन्न राजपूत शासकों ने हिन्दी की राजपूतानी भाषा में लिखी गई रचनाओं को संरक्षित किया तथा वे उनकी वीरता तथा बहादुरी के गुणों का बखान करती थी। प्रमुख रचनाओं में चंद बरदाई द्वारा रचित प थ्वीराज रासो तथा अन्य रचनाएं जैसे बीसलदेव रासो और हम्मीर रासो थीं। इन कई रचनाओं की प्रामाणिकता में संदेह है, क्योंकि मूल रचना में विभिन्न तथ्य बीच में डाले गए हैं। जैन तथा बौद्ध साहित्य के भी अन्य स जन कार्य भी मिलते हैं, जिनसे इस काल की जानकारी प्राप्त होती है।

हिन्दी भाषा का विकास अन्य परिवर्तन के दौर से गुजरा जब 14वीं और 15वीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन में भक्ति परंपराओं और विचारों से परिपूर्ण भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ। कबीर ने एक नई शैली 'उलटबांसी' का उपयोग किया, जिसमें विरोधाभास तथा गूढ़ार्थ का वर्चस्व था। भक्तिकालीन संत तुलसीदास ने हिन्दी की अवधी शैली का प्रयोग किया, मीरांबाई ने जहां राजस्थान की मारवाड़ी बोली में रचनाओं का स जन किया, वहीं सूरदास ने ब्रज भाषा में। सूफी सन्तों ने भी बड़ी मात्रा में जनता तक अपने विचार पहुंचाने के लिए इन भाषाओं को माध्यम बनाया। वहीं चिश्ती संतों ने अपने आध्यात्मिक संगीत के संपादन तथा गायन के लिए हिन्दी का प्रयोग किया।

बंगला

10वीं तथा 12वीं शताब्दी में लिखे गए लोकगीत चार्यपद बंगाली साहित्य के सबसे पुराने उदाहरण मिलते हैं। कवीन्द्र तथा श्रीकरनन्दी की रचनाएं बंगाली साहित्य की आरंभिक रचनाओं में प्रमुख मानी गई हैं। भक्ति आंदोलन के विकास तथा चैतन्य द्वारा लिखे भजनों ने इस भाषा की प्रगति में सार्थक भूमिका निभाई। ब न्दाबनदास द्वारा रचित चैतन्य भागवत या चैतन्य मंगल बंगाली भाषा की महान रचना मानी जाती है, जिसने संत की म त्यु के दस वर्ष पश्चात् न सिर्फ उनके महत्व को दर्शाया, बल्कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। क ष्णदास कविराज द्वारा रचित चैतन्य–चरिताम त अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। लोचनदास को लोकगीत की नई शैली धमाली के उद्भव के लिए जाना जाता है। इस युग के दौरान लिखी गई वर्णनात्मक कविताएं मंगलकाव्य भी लोकप्रिय रहे। इन्होंने स्थानीय देवी चंडी का महिमामण्डन किया तथा शिव और विष्णु जैसे पौराणिक देवों को घर–घर के मंदिर में पहुंचाया। मंगल काव्यों ने अपना वर्णनात्मक स्वरूप पुराणों से लिया।

असमिया और उड़िया

13वीं शताब्दी में हेमाशसरस्वती, प्रह्लादचरित तथा हर गौरी साम्यद की रचनाएं असम भाषा की प्रथम रचनाएं मानी जाती हैं। असम में साहित्य का विकास भक्ति आंदोलन का ही परिणाम था। असम में वैष्णववाद को प्रोत्साहित करने वाले शंकराचार्य ने असमिया कविताओं के विकास में भी सार्थक योगदान किया। उनके शिष्य माधव ने भक्ति के आयामों का वर्णन करते हुए भक्ति रत्नावली तथा व ंदावन में क ष्ण के जीवन का विवरण करती बारागीता की रचना की थी। पुराणों के भी असमिया भाषा में अनुवाद मिलते हैं। उड़ीसा में सरलदास की रचनाएं उड़िया भाषा की प्रथम रचना मानी जाती है। मधुसूदन, भीम तथा सशिव द्वारा पुराणों पर आधारित कई काव्यों की रचना हुई। राधा और क ष्ण के संबंधों पर आधारित रस–कलोल भी उस युग की उल्लेखनीय रचना थी। अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं में शिशु शंकर दास द्वारा रचित उषाभिलाषा तथा कार्तिक दास द्वारा रचित रुक्मणी विवाह मुख्य है। उपेन्द्र भांजा (1672-1720) की रचनाएं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि आने वाले समय में इन्होंने उड़िया साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया।

दक्षिण भारत में साहित्य

दक्षिण में महत्त्वपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्वों में विल्लीपुतुरर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। संस्क त शब्दों के प्रयोग की परंपरा तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति का श्रेय उन्हीं को जाता है। तमिल में अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं में हम वैष्णव विद्वानों द्वारा लिखे गए भाष्य पाते हैं तथा संगम युग पर लिखे गए भाष्य जैसे तोलकपियम तथा कुराल भी हमें मिलते हैं। तमिल साहित्य की अधिकतर रचनाएं शैववाद तथा वैष्णववाद से संबंधित हैं। मध्यकालीन युग की मुख्य रचनाएं हैं – हरिदास द्वारा इरुसाम्यविलक्कम, मरेन्नरबंदर क त शिवदरुमोतरम तथा शैव समयनेरी। दर्शन के क्षेत्र में उल्लेखनीय रचनाएं थी – पुराण तिरुमलेन्थम क त चिदम्बरपुराणन (1508) तथा बालसुब्रह्मण्य कविरयर क त पालनिट्टलपुराणम।

इस युग में सर्वाधिक प्रसिद्ध तेलुगू कवि एराप्रगद थे, जिन्होंने साहित्य लेखन की चम्पू शैली को लोकप्रिय बनाया (गद्य तथा पद्य का मिश्रण)। उन्होंने भागवतपुराण का भी तेलुगू में अनुवाद किया। विजयनगर के शासक क ष्णदेव राय ने अमुकतमलयद की रचना तेलुगू में की। उनके दरबार के प्रख्यात कवि अल्लारानी पेद्दना तथा नन्दी तिम्माहा थे, जिन्होंने

परिजटपहरण का स जन किया। भट्टुमूर्ति अर्थात् राम राज भूषण वासुचरित्र तथा हरिश्चन्द्र नालोपरव्यणम (नल तथा राजा हरिश्चन्द्र की कहानी का वर्णन) के लिए प्रसिद्ध हैं। कन्नड भाषी क्षेत्रों में जैन साहित्यकारों ने साहित्यिक रचनाओं में वर्चस्व बनाया। वीरसैव आंदोलन को लोकप्रिय बनाने वाले बसव तथा उनके अनुयायियों ने कन्नड साहित्य के महत्त्वपूर्ण पहलू का निर्माण किया। होयसल शासकों के संरक्षण ने इस भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जैरोप्पा का 'वादी–विद्यानन्द' कन्नड कवियों का एक साहित्य संग्रह है। जैन विद्वान 'साल्व' ने त्रिलोकरार (ब्रह्मांड विज्ञान पर), अपराजियस्तक (दर्शन शास्त्र पर) तथा भारतेश्वरचरित (प्रसिद्ध राजा भरत का जीवन) की रचना की। इस काल में मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में उभरी। प्रारंभ रचना में भाषा मौखिक रूप में ही थी तथा 14वीं शताब्दी में हम 'रामचरितम्' नाम की प्रथम रचना पाते हैं। रामपणिक्कर जिन्होंने भारत गाथा, सावित्री माहात्म्य तथा भगवतम् लिखी, वे मलयालम भाषा की प्रमुख रचनाएँ मानी जाती हैं।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. संस्क त में लिखे गए 2 प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखें?

2. काव्य क्या है?

3. अमीर खुसरो कौन थे?

4. जियाउद्दीन वरानी द्वारा रचित दो प्रमुख रचनाओं का नाम लिखें।

5. सबक–ए–हिन्दी से आप क्या समझते हैं?

6. मध्यकालीन युग में विकसित हुई चार क्षेत्रीय भाषाओं का नाम लिखें।

14.5 संगीत

सलतनत काल के दौरान संगीत की जानकारी बहुत सीमित है। संगीत के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण चरण हमें खुसरो के समय पर मिलता है। कहा जाता है कि इसी युग में कव्वाली विधा का उदय विकास हुआ। कई आधुनिक राग जैसे ऐमान, गोरा तथा सनम के विकास का श्रेय भी उन्हें जाता है। उन्होंने संगीत में नए वाद्ययंत्रों का भी आविष्कार किया जैसे सितार, जो भारतीय वीणा तथा फारसी तम्बूरा का मिश्रित रूप है। दक्षिण एशिया में नए वाद्ययंत्र रबाब तथा सारंगी तुर्कों के साथ मध्य एशिया में आए। व ंदावन में स्वामी हरिदास ने संगीत को प्रोत्साहन दिया तथा मुगल बादशाह के दरबार के रत्नों में से एक तानसेन को दीक्षित किया था। तानसेन भारतीय शास्त्रीय संगीत के मुख्य रत्न माने जाते हैं तथा उन्हें नए राग जैसे मियां की मल्हार, मियां की टोड़ी तथा दरबारी के स जन का श्रेय भी दिया जाता है। उत्तर भारतीय संगीत शैली की द्रुपद शैली की

प्रवीणता में राजा मान सिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। दक्षिण में जनक तथा जन्य रागों की नई शैली इस युग में मिलती है। कोंडाविदु के रामामात्य द्वारा (1550 में) रचित स्वर्ण मेला कलानिधि में 20 जनन तथा 64 जन्य रागों का विवरण प्राप्त होता है। 18वीं शताब्दी तक संगीत की नई विधाओं तराणा, दादर तथा गज़ल का अस्तित्व भी हम देखते हैं।

14.6 चित्रकला

सीमित प्रतिरूपों की वजह से सल्तनत युग में चित्रकला के विकास का अध्ययन हो नहीं सका है। सबसे नज़दीकी दष्टिकोण सल्तनत काल के साहित्यिक प्रसंगों से प्राप्त भित्ति चित्र में मिलता है। भित्ति चित्र का आरम्भिक संदर्भ इल्तुतमिश की प्रशंसा में क़सीदा से प्राप्त होता है जो खलीफा के राजदूत का स्वागत करने के लिए बनाए गए मुख्य मेहराब के दीवार पर वर्णित आकतियों का वर्णन करता है। अन्य संदर्भों में तारीख–ए–फिरोज़शाही में भी मिलता है, जिसमें दिल्ली के महलों की दीवारों पर उभरी चित्रकारों पर प्रतिबंध लगाने की अनुशंसा की गई है। इस काल में दक्षिण एशिया में कुरानी सुलेखन बहुत ही लोकप्रिय हो चला था। कुरान की प्रथम प्रतिलिपि (1399 में) ग्वालियर में लिखी गई थी। पांडुलिपि विविध आलंकारिक नमूनों द्वारा सुसज्जित थी। 15वीं शताब्दी तक गुजरात, मालवा तथा जौनपुर के राज्य कला के प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे।

मुगलों के काल में भारत में चित्रकला ने नए युग में प्रवेश किया। उन्होंने पूरे उत्तर भारत में चित्रकला के चरित्रों को पूरी तरह बदल दिया। मुगल चित्रकला शाही दरबार में प्रचलित विषयों तथा शैलियों द्वारा परिभाषित होती है। मुगल चित्रकला की आरंभिक शैली

चित्र 14.3 मुगल चित्रकला

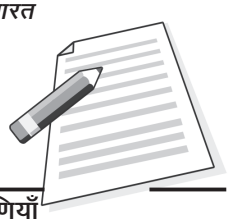

हमें काबुल में मिलती है। हुमायूं के शासनकाल में दो प्रमुख फारसी चित्रकारों मीर सैय्यद अली और अब्दुस समद को राजसी संरक्षण प्राप्त था।

अकबर ने उन्हें हमज़नामा की पांडुलिपि की व्याख्या करने के लिए नियुक्त किया था। 1400 प ष्ठ वाली पांडुलिपि ग्वालियर, गुजरात, लाहौर, तथा कश्मीर के कलाकारों द्वारा रचित है। इसी काल के दौरान मुगल कला की नए विशेषताएं विकसित हुईं। इस युग में एक ही चित्र पर दो या यहां तक कि चार चित्रकारों द्वारा बनाए गए कई चित्र सामूहिक कार्य हैं। इस चित्रकला की प्रमुख विशेषताओं में से मुख्य हैं — आक तियों की सीमित गतिविधियां, चित्रकारी की रेखाओं की परिष्क तता तथा वास्तुशिल्पी स्तम्भों का समतल चित्रांकन। मुगल चित्रकला अपनी स्वाभाविकता तथा लय, भारतीय वस्त्रों में पात्रों का चित्रण तथा प ष्ठभूमि में पूरक द श्यों के प्रयोग के लिए भी विख्यात है। मुगल चित्रकला की दो प्रमुख विषयवस्तु दरबार की मुख्य घटनाओं का चित्रण तथा विख्यात व्यक्तियों के रूपचित्र थे।

जहांगीर के शासनकाल में मुगल चित्रकला में और परिवर्तन परिलक्षित होते है। जहांगीर कालीन चित्रकला रूपवादी शैली पर ज़ोर देती है तथा व हद हाशिये वाले चित्र मिलते हैं जो वनस्पतियों तथा मानवाक तियों के चेहरों के चित्रण द्वारा सुसज्जित हैं। यह स्वाभाविक

चित्र 14.4 राजपूत चित्रकला

चित्रण जहांगीर के शासन काल में फला–फूला। चित्रों की प ष्ठभूमि में व क्षों, नदियों, पक्षियों तथा नहरों का प्रयोग बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

शाहजहां के शासनकाल में बने चित्रों में शाही दरबार से सम्बधित स्त्रियों का चित्रण तथा प्रेम के रोचक द श्य परिलक्षित होते हैं जबकि औरंगज़ेब के शासनकाल में बने चित्र मुगल शासक के सैन्य अभियानों की झलक दिखलाते हैं। स्थापत्य कला में भी मुगल चित्रकारी ने क्षेत्रीय शैलियों के विकास तथा प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जिसने समान विशेषताओं वाली अलंक ति को दोहराने का प्रयत्न किया।

इसी काल की राजपूत चित्रकारी में विभिन्न राजपूत शासकों के विविध राजदरबारों का चित्रण था। 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में राजपूत चित्रकला में कई प्रणालियों तथा दरबार के द श्यों का चित्रण हमें मिलता है। राजपूत काल की चित्रकला बहुत ही विस्त त भूभाग पर फैली थी, हर क्षेत्र में कलात्मक विषय में भिन्न उप विषय का निर्माण हुआ। अन्य लोकप्रिय क्षेत्रीय शैलियों में दक्किनी शैली मुख्य थी तथा बंगाल, गुजरात और उड़ीसा में भी कला की क्षेत्रीय शैली का विस्तार देखने को मिलता है। राजपूत चित्रकला पुनः 18वीं शताब्दी में फली–फूली जब कई कलाकार अपने नए संरक्षकों की शरण में आए। इसी समय कला की कई क्षेत्रीय शैलियों का उदय भी देखने को मिलता है। ये चित्र अपने रंगों की चटखता के लिए विख्यात हैं तथा आखेट के द श्य, व्यक्ति का रेखाचित्र तथा संगीत सत्र का वर्णन इनमें मिलता है। इस चित्रकला की मुख्य शैलियां मेवाड़, बूंदी तथा किशनगढ़ शैलियां है।

पाठगत प्रश्न 14.5

1. अमीर खुसरो द्वारा स जित संगीत वाद्य यंत्रों के नाम लिखें?

2. ध्रुपद शैली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका किसने निभाई?

3. जहांगीर के काल में चित्रकला में क्या शैलीगत परिवर्तन आए?

4. मुगल चित्रकला की मुख्य विषय वस्तु का उल्लेख करें।

14.7 वास्तुशिल्प

दिल्ली सल्तनत का वास्तुशिल्प

मध्यकाल में वास्तुशिल्प की नई शैलियों तथा रूपों ने जन्म लिया। इस काल में मेहराब तथा गुम्बद नए स्थापत्य संयोजन बने। चूने–सीमेंट, पानी और रेत के मिश्रण के भवन तथा मकान निर्माण में प्रयोग ने भवन तकनीक को एकदम बदल दिया। मेहराबों का विकास इस युग की स्थापत्य कला की मुख्य विशेषता थी। मेहराबों के निर्माण के लिए

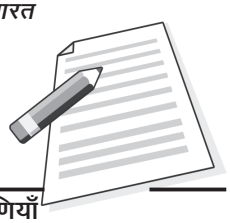

पत्थर तथा ईंटे टेढ़ी रेखा के आकार में रखे जाते थे तथा बांधने वाली उत्क ष्ट सामग्री द्वारा परस्पर गुंथे होते थे। मेहराबों का निर्माण विभिन्न रूपों में हुआ किंतु सबसे विशिष्ट नुकीले प्रकार के थे। 14वीं शताब्दी में एक भिन्न प्रकार के मेहराब चतुर्केन्द्री मेहराब, तुगलकों द्वारा निर्मित भवनों में प्रयुक्त हुए।

उपमहाद्वीप में तुर्क कालीन आरंभिक कुछ ही भवनों में भवन निर्माण की नई सामग्री का उपयोग दिखता है। इस युग की अधिकतर इमारतों में उत्क ष्ट तराशी हुई भवन सामग्री, स्तंभ तथा पुराने भवनों के कूपक का ही पुनः प्रयोग हुआ है। इस काल में राजगीरी के कार्य में पत्थरों का प्रयोग व हद रूप से मिला है। भवन में प्लास्टर करने के लिए सर्व प्रचलित सामग्री खड़िया मिट्टी अत्यन्त लोकप्रिय थी। साथ ही ऐसे स्थानों पर जहां पानी के रिसाव की संभावना थी, जैसे छत, सुरंग तथा नाले, वहां पर चूने–प्लास्टर का प्रयोग किया गया। इस काल के उत्तरार्ध में खड़िया मसाले का प्रयोग सर्वत्र लोकप्रिय हो चला था।

यहां हम स्थापत्य कला की सल्तनत, मुगल तथा राजपूत शैली में भारत में हुई प्रगति का अध्ययन करेंगे।

सल्तनत काल

कुत्वातुल इस्लाम मस्जिद (1198), कुतुब मीनार (1199-1235), अढाई दिन का झोपड़ा (1200) तथा इल्तुतमिश का मकबरा जैसे स्मारक भारतीय–इस्लामिक शैली के आरम्भिक रूप को दर्शाते हैं। आरम्भिक इमारतों जैसे स्मारक की शैली जहां एक ओर स्थानीय कलाकारों के काम को प्रदर्शित करती हैं, वहीं बाद की इमारतें में भारतीय–इस्लामिक शैली का विकास दिखाई देता है। इन स्मारकों में गुम्बदों तथा मेहराबों का क्रमबद्ध विकास द ष्टिगोचर होता है। इस शैली के उत्क ष्ट नमूने इल्तुतमिश (1233-34) तथा बलबन का मकबरा (1287-88) हैं। कुतुब परिसर में अलाई दरवाजा (1305) तथा निजामुद्दीन में जगत खाना मस्जिद (1325) खिलजी काल के उत्क ष्ट उदाहरण हैं। यहां पर सेलजक स्थापत्य परम्परा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। घोड़े

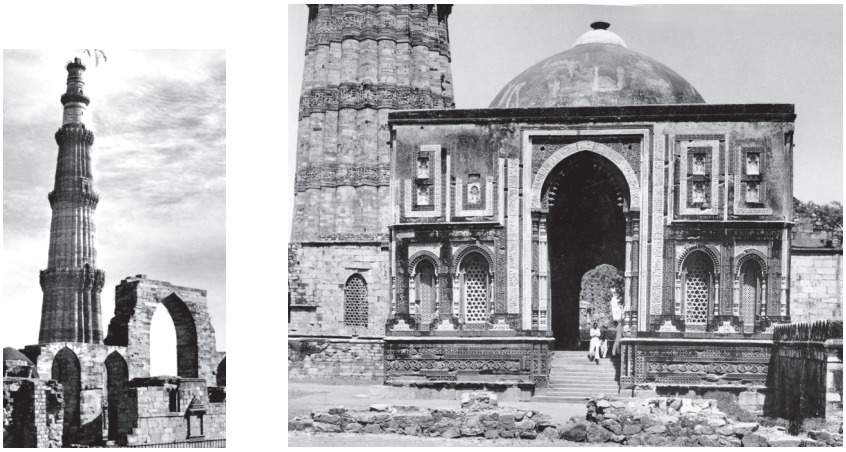

चित्र 14.5 कुतुबमीनार और अलाई दरवाजा

के नुकीले जूतों के आकार के मेहराबों का निर्माण गुम्बदों का प्रस्फुटन, अलंक त संगमरमर नक्काशी तथा लाल पत्थरों का उपयोग, मेहराबों के भीतरी भिन्न पर कमल पंखुडी जैसी किनारियों का आविर्भाव तथा नई राजगीरी इस शैली की प्रमुख विशेषताएं थीं। तुगलक काल की नई शैली में मुख्य भवन निर्माण सामग्री के रूप में छोटे–बड़े अनगढ़े पत्थरों का प्रयोग, दीवारों तथा छावनियों का चतुर्कोणीय मेहराबों का निर्माण, नोकदार गुम्बदों का निर्माण तथा अष्टकोणीय गुम्बद योजना का प्रारंभ हम मुख्य विशेषताओं के रूप में पाते हैं। तुगलक वास्तुशिल्प की अन्य मुख्य विशेषता टूटी हुई अथवा ढलाव वाली दीवारें थीं। इसने भवनों को मजबूती प्रदान की। आगे चलकर कई गुम्बद अष्टकोणीय योजना के अंतर्गत बने वहीं कई गुम्बदों ने समकोणीय योजना के अंतर्गत अपना आकार ग्रहण किया। सूरी के स्थापत्य स्मारकों को हम दो काल खंडों में विभाजित कर सकते हैं – पहला शेरशाह सूरी के पिता तथा खुद शेरशाह के मकबरे जैसी सासाराम (1530-40) के स्मारक। दूसरा चरण (1590-1545) हमें दिल्ली में पुराना किला तथा किले के भीतर किलाई कुन्हा मस्जिद के स्मारकों के रूप में मिलता है। मुगल काल में चतुर्कोणीय मेहराबों के विकास से पूर्व ताज के वक्रों में हल्की समतलता अंत्तिम अवस्था की ओर संकेत करती है।

क्षेत्रीय विविधताएँ

इस काल के दौरान हमें क्षेत्रीय स्तर पर स्थापत्य कला की विभिन्न शैलियों का विकास भी देखने को मिलता है। पूर्वी भारत में बंगाल तथा जौनपुर में दो विशिष्ट शैलियों का उदय पाते हैं। बंगाल शैली के मुख्य भवन मालदा तथा गौर और पंडुआ नगरों में देखने को मिलते है। इसमें दो मुख्य विशेषताओं की शुरुआत भी हुई। पहली विशेषता है – लटकी हुई मेहराब जिसकी चौड़ाई तथा केन्द्र अपने मुख्य समतल केन्द्र से अधिक है। दूसरी विशेषता मेहराब के कक्षों की छत को इस तरह से ऊंचा करना जहां छोटे गुंबद व्यवस्थित तिरछी ईंटों की सहायता से निर्मित हों कि वह चौकोर से व त्तीय नींव के निर्माण में मदद दे। इस काल की अन्य उपलब्धि बांस के भवनों के स्थान पर ईंटों से निर्मित भवन थे, जिसके दौरान व त्तीय छतों का रूप विकसित हुआ। जौनपुर शैली की व्याख्या वहां की बनी मस्जिदें कर देती हैं। जौनपुर की शैली तुगलक शैली के जैसी ही है। मेहराब तथा तराजू के डंडे का प्रयोग इस शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं थीं।

पश्चिमी भारत में स्थापत्य कला में उल्लेखनीय कार्य 14वीं शताब्दी में गुजरात में देखने को मिलता है। 14वीं और 15वीं शताब्दी में कला के क्षेत्र में परिवर्तन भी दिखाई देता है। 14वीं शताब्दी में विध्वंस किए मन्दिरों के अवशेषों से मस्जिद का निर्माण मिलता है तथा 15वीं शताब्दी में नई शैली विकसित हुई जिसमें मस्ज़िदों के खाके मंदिर के स्थापत्य छापों की तर्ज पर बनाए गए। मध्य भारत में गालवा क्षेत्र में स्थापत्य कला का विकास उल्लेखनीय रहा। धार तथा मांडु के शहर इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं।

एक अन्य क्षेत्र जिसने स्थापत्य कला में अपनी विशिष्ट शैली विकसित की, वह दक्कन क्षेत्र था, जहाँ उत्तर भारत की स्थापत्य कला की तुलना में बहमनी राज्य एकदम भिन्न रूप से विकसित हुआ। दक्कन शैली में उत्तर भारत की तुगलक शैली तथा फारसी शैली का मिश्रण मिलता है। यहाँ के वास्तुशिल्प की शैली की राजधानी गुलबर्ग (1347) से बिदर (1425) और अंत में गोलकुंडा (1512) में स्थानांतरित होने के दौरान की कालावधि से मेल खाती है। क्रमशः प्रथम चरण में गुलबर्ग की स्थापत्य शैली इस्लामिक

वास्तुशिल्प तथा तुगलक शैली का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरे चरण में फारसी वास्तुशिल्प की शैलियों की नकल मिलती है, जो रंगबिरंगी टाइलो और गुम्बदों के स्वरूप में परिवर्तन से भी स्पष्ट होता है।

विजयनगर कला दक्किन क्षेत्र की अन्य विशेष उपलब्धि थी। इस विशिष्ट कला का अनुपम उदाहरण हम्पी शहर की इमारतों से मिलता है। महलों तथा मन्दिरों के अतिरिक्त शहर में जल सम्बन्धित कार्यों का जाल तथा जन भवनों का निर्माण भी बहुतायत से दिखाई पड़ता है जैसे हाथी अश्वशाला तथा कमल महल। इस शैली की अनुपम विशेषता वास्तुशिल्पी तथा अलंक त उद्देश्यों के लिए स्तंभों का प्रयोग है। मन्दिर स्थापत्य की यह शैली तुलुव शासकों के समय में सर्वोच्च शिखर पर पहुँची। स्थापत्य कला की इस परम्परा की आकर्षक मूर्तिकला की परम्परा का साथ मिला जिसने कई पौराणिक आक तियों तथा घटनाओं की व्याख्या की। हेमाकुट पहाड़ी पर स्थित मन्दिर, विरूपक्ष मन्दिर तथा हजारा राम मन्दिर विजयनगर मंदिर की वास्तुशिल्प के उत्क ष्ट उदाहरण हैं।

मुगलकालीन स्थापत्य कला

इस काल में व्यापक स्तर पर स्थापत्य कला में कार्य हुए जिससे कला भारत में अपने चरम पर पहुँची। यह विचारों तथा शैलियों के परस्पर आदान–प्रदान का भी युग था, जिसने सल्तनत काल से सर्वथा भिन्न स्थापत्य कला को जन्म दिया तथा जिसमें स्थानीय

चित्र 14.6 हुमायूँ का मकबरा

तथा क्षेत्रीय विशेषताओं का भी समन्वय था। मुगल बादशाह अकबर ने शानदार परियोजनाओं की शुरुआत की जो इस युग का प्रतीक है।

इस युग की आरम्भिक इमारतों में बाबर द्वारा 1526 में पानीपत तथा सम्भल में निर्मित 2 मस्जिदें हैं। बाबर को ही ढोलपुर, रामबाग तथा आगरा में ज़हराबाग का खाका तैयार करने का श्रेय जाता है। आगरा तथा हिसार में स्थित 2 मस्जिदें, द्वितीय मुगल बादशाह हुमायूँ के समय की हैं। मुगल वास्तुशिल्प की भव्यता का युग हुमायूँ के मकबरे के निर्माण

से प्रारम्भ होता है जिसका खाका ईरान के मिराक मिर्जा ग्यास ने बनाया था। वह मकबरे पर कार्य करने के लिए अपने साथ ईरान से मजदूर लाया था। यह मकबरा बागों से घिरा हुआ तथा बलुआ पत्थर के आच्छादित आधार पर बने स्मारकों का सबसे पहला उदाहरण है। यह मकबरा अष्टकोणीय है तथा ऊपर ऊँचा गुम्बज है। यह गुम्बद दोहरा गुंबद है जो दो परतों में बना है। एक परत इमारत के अन्दर की भीतरी छत प्रस्तुत करती है तथा बाहरी परत जो शिखर पर है, वह मुख्य इमारत को प्रस्तुत करती है।

अकबर के काल में बहुत सी देशी शैलियों का विस्तार हुआ, जिसने बलुआ पत्थर का सामान्य प्रयोग, मेहराबों का प्रयोग (मुख्यतः अलंक त रूपों में) तथा सजावट को जन्म दिया जिसमें मुख्यतः मजबूत नक्काशी या जटित प्रतिरूप है तथा अन्दर की दीवारों पर चटकीले रंगों का प्रयोग हुआ है। महत्त्वपूर्ण स्मारक परियोजनाओं में आगरा के किले का निर्माण था, किले के अन्दर कई ढाँचों के निर्माण में गुजराती तथा बंगाली शैली का प्रयोग हुआ जो शाहजहाँ द्वारा किले को नया रूप देने के लिए नष्ट कर दी गई थी। जहाँगीर महल, लाल पत्थरों की सुद ढ़ इमारत हिन्दू तथा इस्लामिक शैली के प्रयोग के लिए जानी जाती है। कोष्ठ तथा डंड के समायोजन ने मुख्य स्थापत्य पद्धति का निर्माण किया। इसकी झलक लाहौर तथा इलाहाबाद के दुर्गों के महलों में मिलती है। फतेहपुर सीकरी के निर्माण के साथ ही अकबर कालीन स्थापत्य कला ने नए युग में कदम रखा। 1571-1585 के दौरान बने इस महल में लाल पत्थरों

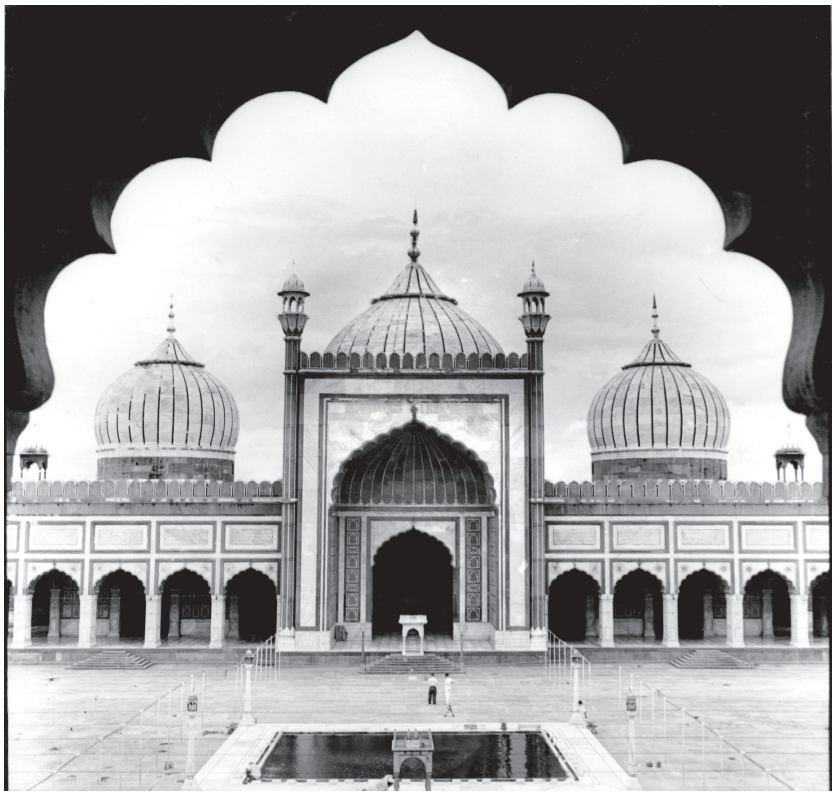

चित्र 14.7 जामा मस्जिद दिल्ली

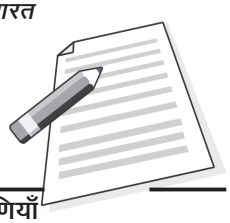

का उपयोग किया गया है। इस इमारत को दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है, धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष। धार्मिक इमारतों में मुख्य है – जामा मस्जिद, बुलन्द दरवाजा तथा शेख सलीम चिश्ती का मकबरा। धर्मनिरपेक्ष इमारतों में महल, प्रशासनिक इमारतें तथा अन्य इमारतें हैं। जामा मस्जिद में मस्जिद की आदर्श योजना है, जिसमें केंद्रीय आंगन है जो तीन तरफ से आच्छादित है तथा गुम्बदाकार छत है। इसके आंगन में सलीम चिश्ती का मकबरा है। इसकी अन्य प्रमुख इमारतों में जोधाबाई महल, पंचमहल, (पांच मंज़िला भवन जिसकी हर बढ़ती मंजिल आकार में घटती जाती है), दीवान–ए–खास (आयताकार रूप में तथा बाहर से दो मंज़िला) तथा दीवान–ए–आम है। अन्य इमारतों में हाथी पोल तथा कारखाना इमारतें हैं।

जहांगीर के काल की मुख्य स्मारकों में सिकंदरा स्थित अकबर का मकबरा तथा इत्माद–उद–दौला मकबरा है। सिकन्दरा स्थित मकबरा बाग से घिरा हुआ है। मकबरा तीन मंजिलों में बना है। पहली मंजिल एक आच्छादित मंच का आधार है तथा तीन मंज़िलों में बीच की मंजिल लाल पत्थरों से तथा सबसे ऊपर वाली मंजिल सफेद संगमरमर से बनी है, जो ऊपर से खुली है और पर्दे से घिरी है। 1622-28 में बना इत्माद–उद–दौला का मकबरा अकबर की शैली से एकदम अलग है। गुम्बदाकार छत से घिरा हुआ यह मकबरा संगमरमर की खूबसूरत नक्काशी से बना हुआ है। जहांगीर ही कश्मीर में प्रसिद्ध मुगल गार्डन की नींव डालने वाला माना जाता है।

शाहजहां के काल के महत्त्वपूर्ण स्मारकों में दिल्ली का लाल किला, आगरा की मोती मस्जिद, दिल्ली की जामा मस्जिद तथा आगरा का लाल किला है। लाल किला यमुना नदी के किनारे आयत के रूप में बना हुआ है। इसमें दो द्वार हैं दिल्ली तथा लाहौर दरवाजा। नदी के किनारे को छोड़कर किले के आसपास खाई है, जो पूरे किले को घेरती है। किले के अंदर की मुख्य इमारत दीवान–ए–आम, दीवान–ए–खास तथा रंग महल

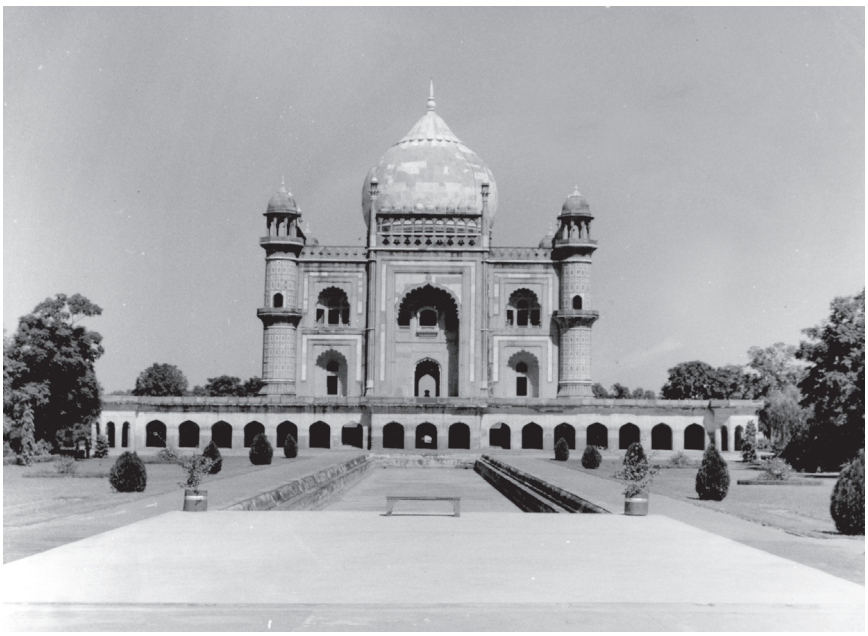

चित्र 14.8 सफदरजंग का मकबरा

है। आगरा में बनी मोती मस्जिद एक वैकल्पिक योजना के साथ किया गया प्रयोग है, जिसमें खुला प्रार्थनास्थल है तथा मीनारों के स्थान पर प्रार्थना स्थल के चारों ओर छतरियों का निर्माण किया गया है। दिल्ली की जामा मस्जिद, फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद का ही व हद रूप है। यह एक बड़े मंच पर बनी है। मस्जिद के अंदर तीन ओर स्तंभवालियां हैं तथा चौथी ओर शरणस्थल है। शरणस्थल पर संगमरमर से बने तीन गुंबद हैं। ताजमहल शाहजहां की भव्य परियोजना है। ताजमहल का निर्माण 1632 में प्रारंभ हुआ तथा यह 1643 में बनकर पूरा हुआ। भवन में ऊंची अंतःक्षेत्रीय दीवारों के साथ मध्य में भव्य द्वार मार्ग आयताकार है। ताज की मुख्य इमारत संगमरमर के एक बड़े चबूतरे पर, परिसर के उत्तरी किनारे पर स्थित है। इस इमारत में एक बहुत विशाल गुम्बद है, जो ढांचे को ढँकता है तथा भवन की अलंक त विशेषताओं में मुख्यतः बाहरी हिस्से पर सुलेखन तथा जड़ाऊ कार्य है तथा अंदर पैट्रा डयूरा है।

दिल्ली के लाल किले की मोती मस्जिद, लाहौर की बादशाही मस्जिद तथा अपनी पत्नी रबिया उद दौरान की याद में औरंगाबाद में बनाया स्मारक औरंगजेब के समय की मुख्य इमारतें हैं। औरंगाबाद का स्मारक ताजमहल से प्रेरणा लेकर बनाया था। औरंगजेब के पश्चात् के स्मारकों में दिल्ली में सफदरजंग का मकबरा क्षेत्रीय शासकों द्वारा मुगलों की परम्परा को आगे बढ़ाता प्रतीत होता है।

अलंक त शैली

इस युग की कला की एक अन्य विशेषता इस्लामी इमारतों में अलंक त कला थी, जो उपमहाद्वीप में पहली बार प्रयुक्त हुई थी। अलंक त शैलियों में सुलेखन, रेखाचित्र तथा पत्तियों का चित्रण था। कुरानी सुलेखन शिक्षाएं इमारतों में कोणीय, सादे तथा ब हत लिपि कुफी द्वारा वर्णित थी। सुलेखन इमारत के विभिन्न भागों जैसे छत, दरवाजों की चौखट, दीवारों इत्यादि पर मिली है। दूसरी ओर रेखाचित्रों का उपयोग विभिन्न प्रकार के संयोजन में मिलता है। इन डिज़ाइनों के मुख्य स्रोत व त्त थे, जो कालान्तर में वर्ग, आयत, त्रिकोण तथा बहुकोणी हो गए। फिर इन्हें विविध रूपों तथा उप प्रभागों द्वारा घूर्णन पद्धति से अलंक त किया गया। पीछे देखें, तो सल्तनत कालीन इमारतों में अरब शैली की सजावट मिलती है। इसमें एक निरंतर तना चित्रित था जो लगातार टूट कर पत्तियों की श्रंखला तथा दूसरे तने का निर्माण कर रहा था और वह तना पुनः मुख्य तना होकर वही चक्र पुनः संचालित करता था।

पाठगत प्रश्न 14.7

1. वास्तुशिल्प में मध्यकालीन युग में हुए दो मुख्य परिवर्तनों को लिखें।

2. सही मेहराब क्या हैं?

3. भारतीय इस्लामिक स्थापत्य कला के आरम्भिक प्रकार के कुछ स्मारकों के नाम लिखें।

4. फतेहपुर सीकरी में किस प्रकार के पत्थरों का प्रयोग हुआ है?

5. मध्यकालीन युग में प्रयुक्त कुछ अलक ंत शैलियों के नाम लिखें।

आपने क्या सीखा

मध्यकालीन भारतीय सभ्यता भारतीय तथा फारसी दर्शन, साहित्य, कला तथा स्थापत्य कला को प्रस्तुत करती है। धार्मिक क्षेत्र में सूफी वाद तथा भक्ति परंपरा ने एक दूसरे को प्रभावित किया इसने हिन्दू तथा मुसलमानों को एक दूसरे की परम्पराओं को समझने का अवसर दिया।

उर्दू का उदय व्यवहार तथा संश्लेषण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। संगीत तथा चित्रकला के क्षेत्र में भी यह दिखाई देता है। वास्तुशिल्प के क्षेत्र में प्रकार, रूप, शैली तथा सजावट ने भी एक दूसरे से बहुत कुछ लिया।

इस प्रकार मध्यकालीन युग में दक्षिण एशिया ने धर्म तथा कला के क्षेत्र में कई प्रभावशाली रिवर्तन देखे। सूफी वाद की बढ़ती लोकप्रियता ने इस्लाम की लोकप्रिय स्वीकार्यता को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई वहीं इस्लामी परम्पराओं को उपमहाद्वीप में लोकप्रिय करने में भी आगे रहे। हिन्दू धर्म के विकास के लिए भक्ति आंदोलन ने भी समान भूमिका निभाई। एक तरफ जहां इन्होंने स्थापित धार्मिक कर्मकांडों तथा आडम्बरों को चुनौती दी, वहीं हिंदू धर्म की मुख्यधारा में एकेश्वरवाद जैसे सिद्धांतों को भी मान्यता दिलाई। सूफी तथा भक्ति दोनों ही आंदोलनों ने स्थापित धार्मिक गुरुओं की वैधता पर प्रश्न उठाए तथा स्थापित धार्मिक परम्पराओं को भी चुनौती दी। सबसे मुख्य बात तो यह है कि दोनों ही पंथ स्थापित आडम्बरों के विरोध में बने, किंतु कालान्तर में इन्हें इन्हीं ध ार्मिक पद्धति का अभिन्न अंग बना दिया गया।

मध्यकालीन युग की एक और अन्य विशेषता क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य की उन्नति रही। बढ़ती क्षेत्रीय पहचान ने कला तथा साहित्य में नए रूपों का निर्माण किया। बंगाली, गुजराती, मराठी और तेलुगू जैसी क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार एक मुख्य चरण है। अनुवाद की लोकप्रियता ने पाठकों की संख्या में व द्धि की तथा विचारों के आदान–प्रदान में भी काफी उन्नति देखी गई। विचारों के आदान–प्रदान ने संगीत में नए विचारों को जन्म लिया। सितार के प्रयोग तथा संगीत की नई शैलियों ने इस युग में संगीत को और सम द्ध किया।

कला के क्षेत्र में मुगल तथा राजपूतों से संरक्षण प्राप्त चित्रकला में नए–नए विकास हुए। शैली, चरित्र तथा अच्छे ढंग से प्रस्तुति की वजह से भारत में अपने पूववर्ती काल में थोड़ा परिवर्तन भी हुआ। मध्यकालीन सामंजस्य की झलक मुगल वास्तुशिल्प में मिलती है। बड़ी संख्या में किले, महल, मंदिर तथा मस्जिदों का निर्माण इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं। भव्य अलंकरण तथा गुम्बदों का निर्माण इस युग की वास्तुशिल्प के मुख्य उदाहरण हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. सूफी शिक्षाओं के मुख्य पहलुओं पर चर्चा करें।
2. ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी ने कौन से सूफी सिलसिले की स्थापना की? उनके सिलसिले की मुख्य शिक्षाएँ क्या थीं?
3. विभिन्न भक्ति संतों की शिक्षाओं में क्या समानताएं थीं?
4. भक्ति आंदोलन ने बंगाल तथा महाराष्ट्र में क्या मुख्य विकास किए।
5. गुरुनानक की शिक्षाओं के महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डालें।
6. मध्यकाल में संस्क त भाषा के साहित्य में हुए नए प्रयोगों के विकास का उल्लेख करें।
7. अमीर खुसरो कौन था? फारसी साहित्य में उनकी देन का उल्लेख करें।
8. मुगलकाल में प्रस्फुटित चित्रकला शैली की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
9. सल्तनत कालीन स्थापत्य कला की मुख्य विशेषताओं तथा शैली का मूल्यांकन करें।
10. अकबर तथा जहांगीर के काल की स्थापत्य कला में नई शैलियों के उद्भव का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उतर

14.1

1. पीर सूफी शिक्षक को कहते हैं।
2. एक महत्त्वपूर्ण सूफी, जिन्होंने इस्लामी रहस्यवाद को इस्लामी परम्परा से जोड़ा।
3. भक्ति संगीत के लिए प्रयुक्त शब्द।
4. निजामुद्दीन औलिया।
5. वह पंजाब में कादरिया सिलसिला के नेता तथा अकबर के समर्थक थे।

14.2

1. रुढ़िवादी ब्राहमण विचारधारा
2. कबीर, तुकाराम, चैतन्य
3. बंगाल के प्रमुख भक्ति संत

14.3

1. गुरु के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखने वाला सिक्ख
2. पंजाब की प्रमुख व्यावसायिक जाति

14.4

1. राजतरंगिणी, प थ्वीराजविजय
2. यह एक काव्यात्मक विवरण है।
3. वे एक फारसी के कवि थे तथा निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे और उन्हें सल्तनत काल में संरक्षण प्राप्त था।
4. फतवा–ए–जहांगीरी/तारीख–ए–फिरोज़शाही
5. भारत में फारसी साहित्य का नया प्रकार
6. मराठी, बंगाली, गुजराती, उड़िया।

14.5

1. सितार
2. राजा मानसिंह
3. रूपवादी शैली का उदय और प्राक तिक चित्रण का उपयोग
4. दरबार की कुछ घटनाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों का चित्रण

14.6

1. मेहराब तथा गुम्बद
2. मेहराब निर्माण की नई शैली जो मध्यकाल में पनपी। केन्द्र का पत्थर इसके लिए आवश्यक था।
3. कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद, कुतुब मीनार, अढ़ाई दिन का झोपड़ा
4. लाल बलुआ पत्थर
5. सुलेखन/भौगोलिक आकार

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखे खंड 14.1 अनुच्छेद 1, 3, 6
2. देखें 14.1 नक्शबंदी सिलसिला
3. देखें 14.2 अनुच्छेद 1 से 4
4. देखें 14.2, वैष्णव भक्ति
5. देखें खंड 14.3 अनुच्छेद 1 और 2
6. देखें खंड 14.4 संस्क त साहित्य में आया अनुच्छेद
7. देखे 14.4 फारसी साहित्य
8. देखें 14.6

9. देखें 14.7 दिल्ली सल्तनत

10. देखें 14.7 मुगल साम्राज्य

शब्दावली

खानकाह	–	सूफी फिरके का गतिविधि केन्द्र
सिलसिला	–	सूफीओ के फिरके
एकेश्वरवादी	–	एक ईश्वर में विश्वास करने वाले
पेट्रा डयूरा	–	फारसी सजावट का ढंग जिसमें सफेद संगमरमर/पत्थरों पर रंगीन पत्थर इस प्रकार रखे जाते है मानो एक ही टुकड़ा हो।
रूह	–	आत्मा
हुलूल	–	पवित्र आत्मा से मिलन
जियारत	–	मकबरों की यात्रा करना, एक प्रकार की तीर्थयात्रा
सम	–	सूफियों का समूह में गाना, बजाना